भाग: 2

भारतीय प्लेट, अंटार्कटिक अभियान और वायमंडल

विनोद के. गौड़ से सुजाता वरदराजन की बातचीत

पिछले अंक में विनोद गौड़ के शोधकार्यों के बारे में पढ़ा था। इस बार विविध संस्थानों में प्रशासक के रूप में किए उनके कार्यों को जानेंगे।

1983 में सी.एस.आई.आर. (वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद) के तत्कालीन निदेशक ने मुझे राज़ी कराया कि मैं हैदराबाद स्थित एन.जी.आर.आई. (राष्ट्रीय भूभौतिकी अनुसंधान संस्थान) की नियुक्ति के लिए बनी चयन समिति से मिल लूँ, जबकि मैं उसमें आवेदक भी नहीं था। यहाँ से मेरी रुड़की के छात्र-केन्द्रित जीवन से विदाई हुई, लेकिन

एन.जी.आर.आई. में अपने कार्यभार को मैंने परिशुद्ध विज्ञान को लागू करने के मिशन के रूप में लिया। पहली चीज़ जो मैंने वहाँ की, वह थी वैज्ञानिकों को स्वयं अपने काम की आलोचना करने और अपने विचार को शोधित करने को प्रेरित करना। उन्हें उन नए क्षेत्रों में काम करने की भी छूट दी जो उन्हें अधिक उत्साहजनक लगते हों इसी बीच मैंने फील्ड और प्रयोगशाला दोनों जगह के उपकरणों को डिज़िटल सिस्टम में व्यवस्थित रूप से आधुनिक करना शुरू किया और समस्थानिक अध्ययन के लिए एक अत्याधुनिक प्रयोगशाला एवं एक आधुनिक कम्प्यूटर सिस्टम को स्थापित किया। इन पहलों को विश्लेषणात्मक फ्रेमवर्क के दायरे के आनुपातिक पैनेपन की आवश्यकता थी। अपने वैज्ञानिकों के दिमाग में इसे उत्प्रेरित करने के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों की एक श्रृँखला तैयार की गई और असाधारण वैज्ञानिकों को इन्हें पढ़ाने के लिए बुलाया गया। अधिकांश युवा एवं कुछ वरिष्ठ वैज्ञानिकों ने इन रुखों का उत्साहपूर्वक स्वागत किया और कुछ इसी तरह एक रचनात्मक माहौल में मुझे अपने इस नए विज्ञान का सपना देखने का समय मिला। इस तरह मैंने अपने कुछ स्वप्नदर्शी सहयोगियों के साथ, धरती के अन्दरूनी हिस्से की तस्वीर खींचने में, खासतौर से टोमोग्राफी से लेकर कैटस्केन जैसी उभरती हुई तकनीकों के बारे में विचार-विमर्श का कोई मौका नहीं गंवाया।

इसी समय मैंने अपने भारतीय मूल के अमरीकी दोस्त डॉ. एच. एम. अय्यर से निवेदन किया कि वह अपने अध्ययन अवकाश का वक्त हमारे साथ बिताएँ और भूकम्पीय किरणों का इस्तेमाल करते हुए डेक्कन ट्रैप के नीचे की परत की प्रकृति का परीक्षण करने में हमारी मदद करें जिससे यह निर्धारित हो सके कि वे प्लम्बिंग चैनल से भरे पड़े हैं (जैसा कि कुछ लोगों का कहना है), अथवा लावा विस्फोट के कुछ अन्य स्रोत संकेतों से, जो पश्चिमी मध्य भारत के लगभग पाँच लाख वर्ग किलोमीटर पर फैले हुए हैं, और शायद इससे भी ज़्यादा बड़ा क्षेत्र पास के समुन्दर में। मैं भाग्यशाली था कि उन्हीं दिनों एन.जी.आर.आई. में आए दो स्नातक छात्रों ने इस काम में उत्साहजनक हिस्सेदारी की। उन्होंने इस विषय पर देश में पहली शोध थीसिस लिखीं जिनके निरीक्षण का सौभाग्य मुझे मिला। और इसके बाद भी इस काम को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने अपना कौशल सिद्ध किया।

सुजाता: क्या आपने किरणों को पैदा किया या फिर वे प्राकृतिक रूप से उपलब्ध थीं?

विनोद गौड़: हमने भूकम्पीय तरंगों के आगमन को रिकॉर्ड किया जो पृथ्वी

में से तरंगों के रूप में गुज़रती हैं। ये भूकम्प के केन्द्र से निकल पूरी पृथ्वी में फैल जाती हैं। टोमोग्राफी के लिए आवश्यक था कि इन तरंगों की आवाजाही के खूब सारे अवलोकन हासिल किए जाएँ। सौभाग्य से, मैग्नीट्यूड 5 का भूकम्प दुनिया के किसी-न-किसी हिस्से में लगभग रोज़ आता है और इनकी ऊर्जा पृथ्वी पर फैल जाती है। इन्हें कुछ महीनों तक, उचित साइट पर स्थित संवेदनशील डिटेक्टर पर रिकॉर्ड करके हम अच्छी संख्या में एक-दूसरे को काटती किरणों के अवलोकन एकत्रित कर सकते हैं। इन तरंगों का विश्लेषण करके वे जिन पदार्थों में से गुज़र आई हैं, उनके भौतिक गुणधर्मों के बारे में कयास लगाया जा सकता है। हमने पृथ्वी के अन्दरूनी हिस्से के परीक्षण के लिए पुणे से लेकर हैदराबाद तक सीस्मोमीटर लगाए।

भारतीय प्लेट के खिसकाव का अध्ययन

सुजाताः क्या आपने हिमालयन प्लेट की सीमा की प्रक्रियाओं पर आधारित अपना अनुसंधान जारी रखा?

विनोद गौड़ः एक ऐसा रिसर्च कैरियर, जो भूविज्ञान की क्रान्ति के परिणाम स्वरूप विकसित हुआ हो उसके लिए हिमालय के प्रति जुनून से मुक्ति पाना बहुत ही कठिन है। वस्तुतः, रुड़की में रहने के दौरान किए गए काम से दो तथ्य सामने लाएः पहला, हिमालय की तराई यानी फुटहिल्स के नीचे भारतीय प्लेट कम-से-कम एक से.मी. प्रतिवर्ष खिसक रही है और दूसरा, वर्तमान समय में इलास्टिक स्ट्रेन यानी तनाव का अधिकतम केन्द्रीकरण, (जहाँ पहुँच कर प्लेट की सामग्री धारण करने की क्षमता जवाब दे जाती है और उसके चटकने से एक भूकम्प बनता है), महान हिमालय के दक्षिणी हिस्से में होता है। हिमालय की गरिमामयी बर्फीली बेल्ट से सटी हुई लगभग 20 किलोमीटर की पट्टी में। लेकिन अभी भी, इन परिणामों को हिमालयन टेक्टॉनिक्स के एक व्यापक फ्रेमवर्क में समझाए जाने की ज़रूरत थी।

सुजाताः एन.जी.आर.आई. में यह विचार क्यों फलीभूत नहीं हुआ?

विनोद गौड़ः वे वैज्ञानिक, जो वैश्विक सर्किट को सन्तुलित करते हुए प्लेटों की सीमाओं के बीच अन्तरद्वीपीय विस्थापनों के आकलन के लिए विभिन्न स्वतन्त्र तरीके इस्तेमाल कर रहे थे, उनका कहना था कि भारतीय प्लेट उत्तर की ओर, यूरेशियन महाद्वीप से टकराते हुए लगभग 5 से.मी. प्रतिवर्ष की दर से खिसक रही है। लेकिन महाद्वीप में उसकी पुष्टि के लिए, कोई प्रत्यक्ष मापन नहीं किया गया था। उदाहरण के लिए, यह पता लगाना कि

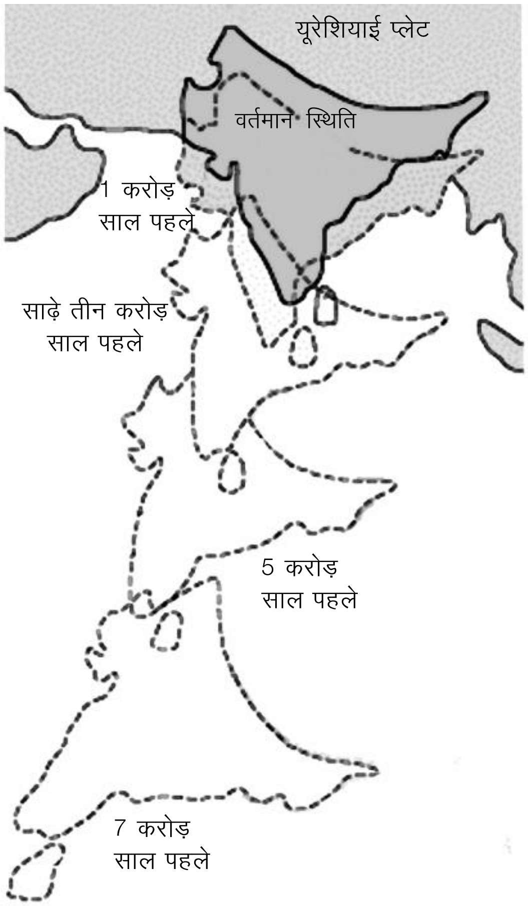

भारतीय प्लेट का सफर: अठारह करोड़ साल पहले भारतीय उपमहाद्वीप का अधिकांश भूभाग, भूमध्य रेखा से काफी नीचे अफ्रीका, अंटार्कटिका, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अमरीका से जुड़ा हुआ था। इस विशाल महाद्वीप (गोण्डवाना लैंड) से अलग होकर भारतीय प्लेट उत्तर की ओर खिसकने लगी।

लाखों साल में भारतीय प्लेट की खिसकाव दर और विविध पड़ाव को जानने में भारत-ऑस्ट्रेलिया-अंटार्कटिका में कालखंड-विशेष की चट्टानों का अध्ययन सहायक साबित हुआ है। इसके अलावा समुद्र तल पर मौजूद चट्टानों में पुराचुम्बकत्व के पैटर्न से मदद मिलती है। भूवैज्ञानिक यह भलीभांति जान गए हैं कि धरती के इतिहास में कब-कब चुम्बकीय ध्रुवों में उलट-पलट हुई है। पुराचुम्बकत्व से खिसकने की गति के अलावा उस समय की भौगोलिक स्थिति के बारे में भी पता चलता है। इन्हीं सब के आधार पर भारतीय प्लेट की यात्रा के विविध सोपान दर्शाए जा सके हैं।

धरती की सात प्रमुख और अन्य उपप्लेट के खिसकाव की गति में काफी विविधता है, जो कुछ मिलीमीटर प्रतिवर्ष से लेकर 15 सेन्टीमीटर/वर्ष के बीच है। प्लेट के खिसकाव को इतनी सटीकता से नापने में संचार उपग्रहों और धरती पर स्थित रिसीवर्स आधारित व्यवस्था का बड़ा योगदान रहा है। इस व्यवस्था में विविध उपग्रहों द्वारा धरती पर मौजूद रिसीवर्स को संकेत भेजे जाते हैं और रिसीवर्स इन संकेतों की प्राप्ति के समय, उपग्रह की स्थिति आदि ब्यौरों को नोट कर लेता है। बार-बार दोहराए जाने वाली इस प्रक्रिया के कारण प्लेट खिसकाव की गति नापी जा सकती है।

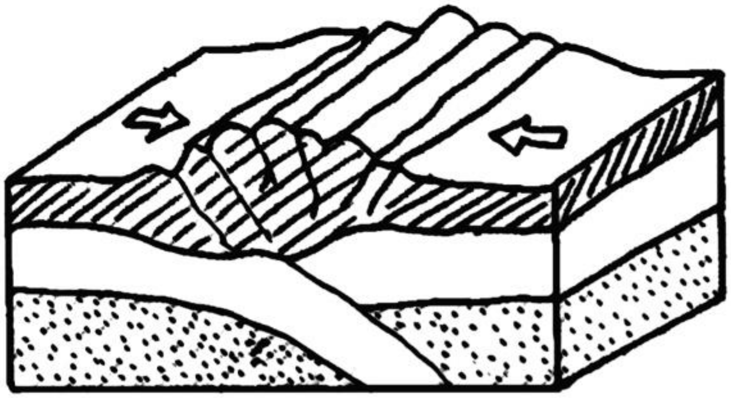

दो महाद्वीपीय प्लेट की टकराहटः जब दो महाद्वीपीय प्लेट एक-दूसरे की ओर खिसकती है तो इन दोनों के बीच मौजूद समुद्री अवसाद विरुपित (डिफोर्म) होकर ऊंची पर्वत मालाओं में तब्दील होने लगती है। हिमालय पर्वत भारतीय प्लेट और यूरेशियन प्लेट की अभी तक जारी टकराहट का ही नतीजा है।

बैंगलोर एवं बैकाल झील के बीच की दूरी का वार्षिक संकुचन (contraction) कितना है। इससे भी ज़्यादा ज़रूरी इस सवाल का जवाब देना था कि पृथ्वी के इन स्थानों के बीच, खासतौर से हिमालय-तिब्बत के पूरे क्षेत्र में, यह आँकड़ा कैसे बँटा हुआ है। हिमालय द्वारा प्रस्तुत खतरे के आकलन के लिए यह सवाल महत्वपूर्ण और अत्यन्त बुनियादी था। अतः मैंने फैसला किया कि मैं इसे 'सेंटीमीटर सूक्ष्मता की वेरी लांग बेस लाइन इन्टरफेरोमेट्री' (VLBI) का इस्तेमाल करते हुए सम्बोधित करूँगा। यह प्रयोग बहुत दूरी पर स्थित तारों से एक ही समय पर प्राप्त होने वाले रेडियो सिग्नल के अभिग्रहण (reception) पर आधारित होता है, खासतौर से जो ब्रम्हांड में बहुत दूर स्थित क्वासर्स (Quiet Sources of Radiation) विकिरण प्राप्त होता है, पृथ्वी के दो स्थान जो एक-दूसरे से कई हज़ार कि.मी. दूरी पर स्थित है - इन स्थानों पर समान फेज़ के विकिरण के पहुँचने के बीच के समयान्तराल का इस्तेमाल करते हुए इन दो साइट के बीच की दूरी अत्यन्त सूक्ष्मता से पता की जा सकती है।

अतः मैंने नासा से बात की। वहाँ एक बहुत प्रशंसनीय व्यक्ति थे जो धरती की स्थलाकृतियों के बारे में खोज करने के लक्ष्य से बने उनके अधिकांश सेटेलाइट कार्यक्रमों के प्रमुख कर्ताधर्ता थे - एडवर्ड फ्लिन जो दुर्भाग्य से अब जीवित नहीं हैं। उन्होंने कहा, "आप हैदराबाद के पास कहीं 10 मीटर

व्यास का टेलिस्कोप स्थापित कीजिए और दो मेधावी वैज्ञानिकों को चुनिए, उन्हें सिग्नल सिद्धान्त और उपकरणों संबंधी कुछ आरम्भिक प्रशिक्षण देकर नासा भेजिए। हम उन्हें इस टेलिस्कोप के सामने के छोर का निर्माण करने के लिए सारी सुविधाएँ उपलब्ध कराएँगे - जिसे बनाकर वे अपने साथ वापस ले जा सकते हैं। और जैसे ही सारी चीज़ें तैयार हो जाती हैं, हम संयुक्त रूप से प्रयोग शुरू कर सकते हैं।"

इस विषय में मैंने सी.एस.आई.आर. के महानिदेशक से चर्चा की। उन्होंने इस पर अपना उत्साह जताया और उसे सी.एस.आई.आर. के उन दर्जनों प्रोजेक्ट में शामिल किया जिन्हें प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के सामने संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया जाना था। इसके बाद सी.एस.आई.आर. ने हमें एक करोड़ रुपए दिए और मुझे टेलिस्कोप लगाने का कार्यक्रम आगे बढ़ाने को कहा, और इस बात का वादा किया कि वे इस प्रयोग को आगे बढ़ाने के लिए ज़रूरी राशि उपलब्ध कराएँगे। मैंने मेहनत से काम शुरू किया। इसके लिए दो मेधावी शोध छात्रों को चुना और 10 मीटर व्यास वाले एक टेलिस्कोप के निर्माण के लिए इलेक्ट्रॉनिक कारपोरेशन ऑफ इंडिया के साथ प्रोटोकॉल बनाने का काम शुरू किया। परन्तु प्रधानमन्त्री के सामने प्रस्तुतिकरण के साथ ही कुछ अन्य घटनाक्रम भी शुरू हो गए। उस मीटिंग के पश्चात सभी ने कहा कि मेरे प्रस्तुतिकरण को बहुत ही सराहना मिली है। मैंने विज्ञान के सवालों और टेक्नॉलॉजी की चुनौतियों को संक्षेप में समझाया। शायद राजीव गाँधी के दिमाग में यह बात रही होगी जब उन्होंने मुझे दिल्ली बुलाया। खेदजनक है कि इसका परिणाम यह निकला कि अगले सी.एस.आई.आर. महानिदेशक द्वारा VLBI प्रोजेक्ट बन्द कर दिया गया, और यह उन निदेशक के सुझाव पर हुआ जो एन.जी.आर.आई. में मेरे बाद आए।

1989 के आरम्भ में, जब मैं बैंगलोर में था, अकादमी की एक बैठक में मुझे संदेश मिला कि प्रधानमन्त्री मुझसे मिलना चाहते हैं। मैं उनसे उनके हवाई जहाज़ में मिला क्योंकि वहीं पर, शहीद दिवस के दिन दिल्ली से नागपुर की उड़ान के दौरान इस मीटिंग की व्यवस्था की गई थी। उन्होंने तुरंत मुझसे कहा, "हम चाहते हैं कि आप आएँ और इस विभाग को साफ-सुथरा कर दें, जो कि अब जनसम्पर्क कार्यालय बन कर रह गया है। हालाँकि आपके खिलाफ बहुत-सी आपत्तियाँ आईं हैं।" मैं यह सब नहीं जानता था। मैंने स्वाभाविक रूप से तात्कालिक जवाब दिया, "आपको उन आपत्तियों पर ध्यान देना चाहिए, उनमें कुछ सच्चाइयाँ हो सकती हैं।"

वे हँस पड़े। हमने कुछ हल्के-फुल्के क्षण बिताए। मैंने विनम्रता से तर्क दिया

कि एक नौकरशाही पद के प्रति मेरा प्राकृतिक रूझान नहीं है। उन्होंने मेरे शब्दों को पकड़ लिया, ये कहते हुए कि, "मैं चीज़ों को ठीक कैसे करूँगा अगर उपयुक्त लोग मना करेंगे।"

दो असाधारण व्यक्तियों - तत्कालीन विज्ञानमन्त्री स्वर्गीय श्री के. आर. नारायणन जो बाद में राष्ट्रपति बने, और तत्कालीन रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष श्री प्रकाश नारायण की दूरदर्शी सलाह से अपनी आशंकाओं को दूर करके मैं सात दिनों में दिल्ली शिफ्ट हो गया।

सुजाताः डी.ओ.डी. में अपने इस नए कार्यभार के प्रति आपकी क्या प्रतिक्रिया थी?

विनोद गौड़ः सचिव का पदभार ग्रहण करने के बाद प्रधानमन्त्री की सचिव श्रीमति सरला ग्रेवाल ने मुझे प्रधानमन्त्री की ओर से आश्वस्त किया कि मेरे सभी विचार एवं प्रस्तावों पर सर्वाधिक प्राथमिकता के साथ ध्यान दिया जाएगा। सौभाग्य से, केवल तीन वर्षों तक, और उससे ज़्यादा नहीं, काम करने के स्पष्ट निर्णय के साथ (जैसा कि मैंने प्रधानमन्त्री को साथ वादा किया था), मैं उन कार्यक्रमों को लागू करने के लिए दृढ़ता से आगे बढ़ा, जिनके विषय में मैंने सपने देखे थे और जिनके लिए राजीव गाँधी ने मुझसे आग्रह किया था कि "मैं चाहता हूँ कि आप ऐसी व्यवस्था की रूपरेखा बनाएँ और उसे लागू करें जिनसे उच्च टेक्नॉलॉजी एवं विज्ञान की सम्भावनाओं का इस्तेमाल आम लोगों के जीवन एवं काम की गुणवत्ता को विकसित करने के लिए किया जा सके।"

तटीय इलाकों के लिए तकनीकें

सुजाताः क्या आप अपने द्वारा शुरू किए गए कुछ विशिष्ट नए प्रोजेक्ट को चिन्हित करेंगे?

विनोद गौड़ः राजीव गाँधी के शब्दों की अपने कानों में अनुगूँज के साथ मेरा पहला ख्याल समुद्री तट पर बड़ी संख्या में रहने वाले मछुआरों की ओर गया - जो हमारे मछली उत्पादन एवं स्वरोज़गार-युक्त कार्यशक्ति में बड़ा योगदान करते हैं। लेकिन उनका जीवन एवं कार्य, अनिश्चितता एवं खतरों से घिरा हुआ था। बहुत से लोग ज़्यादा फायदे की उम्मीद में मछली पकड़ने के लिए श्रम करते हुए सुबह समुन्दर में निकलते थे। कभी-कभी वहाँ देर शाम तक रहते और कभी तो पूरी रात भी वहीं रहते, आने वाले तूफान से अनजान। लेकिन उपलब्ध टेक्नॉलॉजी इन कठिनाइयों को कम करने में सक्षम थी। अन्य देश समुद्री मछली के उत्पादन के लिए प्रचुर मछली वाले क्षेत्र को नियमित रूप से मानचित्रों पर चिन्हित कर रहे थे।

प्रभावी सूचना तन्त्र का प्रयोग सही समय पर खराब मौसम की चेतावनी के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। तथा तरंगों से उत्पादित बिजली का उपयोग समुद्र तटीय निवासियों के लिए किया जा सकता है। साथ ही, उनके मुख्य पेशे के अतिरिक्त कुटीर उद्योगों के विकास को उत्प्रेरित करने के लिए इस बिजली का इस्तेमाल सम्भव है। यहाँ तक कि किसी दिन संरक्षित वातावरण में मछली संवर्धन भी किया जा सकता है।

मैंने इन सम्भावनाओं पर बहुत ही मेहनत से काम किया। संयुक्त सचिव सरदाना ने मेरा शानदार साथ दिया। हमने अनथक रूप से पूरे देश में वैज्ञानिक संस्थानों को कुछ आवश्यक विकास के काम करने का आग्रह किया। हमें दो हृदयस्पर्शी प्रत्युत्तर मिले। उनमें से एक के फलस्वरूप एक समुद्री उपग्रह सूचना सेवा शुरू हुई। यह हफ्ते में दो या तीन बार मछुआरों को मत्स्य-समृद्ध इलाकों के बारे में सूचना देने लगी। काम शुरू होने के केवल 18 महीनों के भीतर ही यह एक यथार्थ बन गया। दूसरा था आई.आई.टी. मद्रास के अभियन्ताओं द्वारा डिज़ाइन किया गया त्रिवेन्द्रम तट के निकट विझिंजम में स्थापित तरंग जेनेरेटर।

सुजाता: उपग्रह के आँकड़े, समृद्ध मत्स्य क्षेत्रों को कैसे चिन्हित करते हैं और क्या समय के साथ यह क्षेत्र बदल जाते हैं?

विनोद गौड़: समुन्दर में मछलियाँ ऐसी जगह एकत्रित होती हैं जहाँ उनके लिए प्रचुर मात्रा में खाद्य सामग्री हो। यह पोषणयुक्त पानी के आगमन से उस जगह निर्मित होता है जहाँ दो अलग-अलग तापमान एवं घनत्व की पानी की धाराएँ मिलती हैं। यह पोषण तत्व प्राणिमन्दप्लवक (zoo-plankton) या खनिज के रूप में हो सकते हैं और उनके एकत्रीकरण के क्षेत्र तापमान के तेज़ उतार-चढ़ाव से पहचाने जाते हैं, जिसे उपग्रह द्वारा प्राप्त समुद्री सतह के विभिन्न हिस्सों के तापमान के आँकड़ों से निकाला जा सकता है। इनका विश्लेषण करके एक तापमान मानचित्र (temperature gradient map) बनाया जा सकता है। यह सूचना आज उपलब्ध अनेकों माध्यमों से मछुआरों तक पहुँचाई जा सकती है। लेकिन हमने फैक्स मशीन का इस्तेमाल करके उन्हें निर्देश देना शुरू किया। चूँकि पानी में एक बड़ा तापीय जड़त्व होता है अतः समुद्र की सतह के तापमान परिवर्तित होने में समय लगता है। इस वजह से तापमान मानचित्र कुछ दिनों के लिए वैध होता है और तत्पश्चात उसे पुनः दोहराना पड़ता है।

यह डी.ओ.डी. के सर्वोत्कृष्ट कार्यक्रमों में से एक बन गया जो उस वक्त से बहुत अधिक विस्तारित हो गया है। मैंने एक अन्य कार्यक्रम लागू किया

जिसका लक्ष्य था - तटीय जल की गतिकी एवं उसके जैव-भूरसायन (biogeochemical) व्यवस्था को समझना। इसके अनुसार लगभग एक दर्जन से अधिक वैज्ञानिक संस्थाओं के संकाय, जो इस तरह चुने गए थे कि कोई भी तटीय क्षेत्र छूटे नहीं और ज़्यादातर क्षेत्रों के आँकड़े एक से ज़्यादा संस्थानों में प्राप्त हों, ने मिलकर काम किया। पूरे साल नियमित रूप से गुजरात से बंगाल एवं अण्डमान तक की 25 कि.मी. चौड़ी तटीय पट्टी के भौतिक एवं जैव-भूरासायनिक प्रतिमानों (parameters) को मोनीटर करने के लिए एक अति महत्वाकांक्षी कार्यक्रम शुरू किया गया जो विभिन्न विषयों व वर्गों में काम कर रहे थे।

ये कार्यक्रम बहुत सावधानीपूर्वक डिज़ाइन किए गए समय-काल मापक प्रोटोकॉल पर आधारित है जिसे वैज्ञानिकों के एक ऐसे समूह के काफी विचार विमर्श के बाद मूर्त रूप दिया गया।

ये सारे प्रयास, निश्चित रूप से एक बहुत उच्च स्तरीय वैज्ञानिक ज्ञान, समझदारी एवं विशेषज्ञता की माँग करते थे। और मैंने यह एहसास कर लिया था कि इन्हें उच्च स्तर पर सोद्देश्यपूर्ण तरीके से बनाए रखने के लिए हमें दार्शनिकों, योजनाकारों एवं डिज़ाइन करने वालों की एक परिषद की ज़रूरत थी - एक ऐसे थिंक टैंक की जो अन्ततः IPCL, बड़ौदा के विख्यात वास्तुकार डॉ. एस. वरदराजन की अध्यक्षता में गठित हुई। इस तरह, मुझे डॉ. वरदराजन, प्रोफेसर रोड्डम नरसिम्हा एवं डॉ. ए. गोपालकृष्णन जैसे असाधारण विद्वानों का अमूल्य योगदान मिला। इनमें से प्रत्येक ने देश को समुद्र में से औषधि से लेकर, ओशन स्टेट मॉडलिंग एवं समुद्रतल उत्खनन के सीमान्त क्षेत्रों में चिरस्थाई दृष्टि एवं महत्वपूर्ण पहल दी है।

सुजाताः आपकी अन्य पहलकदमियाँ कितनी सफल रहीं?

विनोद गौड़ः मेरे सारे प्रयास सफल नहीं रहे। उनमें से कुछ बहुत दुखी करने वाली असफलताएँ थीं - एक मानव-रहित सबमर्सिबिल वेहिकिल का विकास, तट से मछुआरों तक की संचार सेवा के लिए एक नेटवर्क, एक हाइब्रिड जल-थल एक्वेरियम की स्थापना और कुछ ऐसे तटीय विश्वविद्यालयों में स्कूबा डाइविंग कोर्स शुरू करना, जिसने न केवल युवाओं में साहसिक कामों की भावना को जगाने की क्षमता थी बल्कि रोमांचक प्रयोगों (जैसे जलजन्तु विविधता और समुद्री खाद्य शृंखलाओं के व्यवहार का दस्तावेज़ीकरण) में उन्हें सम्मिलित करते हुए उनकी कल्पना को और भी तेज़ करने की क्षमता थीं। ये असफलताएँ पूरी तरह से उन लोगों की कल्पना एवं लक्ष्य की कमी के कारण थीं जिन्होंने उन्हें विकसित करने का वादा किया था।

स्पष्टतयः वे लोग सरकार से पैसा प्राप्त करने के अवसरों की ओर ज़्यादा आकर्षित होते थे, बजाए कोई परिणाम देने या किसी अमूल्य सांस्कृतिक गतिविधि को शुरू करने के। अक्सर मैं सोचता हूँ कि अपने अनेकों संस्थानों में सर्वोत्तम लोगों को सेवा में न जोड़ पाने के कारण भारत देश कितने अधिक सांस्कृतिक अलंकरण खो देता है।

अन्टार्कटिक अभियान - नए अध्ययन

सुजाताः आपके विभाग के पास अन्टार्कटिक विज्ञान का प्रभार भी था। आप वहाँ की गई कुछ रोचक गतिविधियों के बारे में बताएँ।

विनोद गौड़ः सचमुच, डी.ओ.डी. में आने के बाद जिस सबसे बड़ी चुनौती का सामना मैंने किया वह थी - अन्टार्कटिक विज्ञान कार्यक्रम को अर्थपूर्ण बनाना। संसद ने इस कार्यक्रम की काफी आलोचना की थी और प्रधानमन्त्री अत्यन्त अनिच्छापूर्वक अन्टार्कटिक के लिए वार्षिक अभियानों की अनुमति दे रहे थे। उन्होंने मुझसे इन सब बातों का ज़िक्र किया, बहुत कुछ कहा, शायद खबरदार करने की दृष्टि से। मुझे भी यह देखकर अक्सर आश्चर्य होता था कि इन अभियानों को कामचलाऊ तरीके से चलाया जा रहा था जबकि वस्तुतः इतनी सारी उत्तेजक वैज्ञानिक सम्भावनाएँ उपलब्ध थीं - विशाल प्राकृतिक रेफ्रिजरेटर में जड़े हुए, भौगोलिक चुम्बकीय ध्रुव की इस साइट में। अतः सर्वप्रथम अन्टार्कटिक में भारतीय हितों के विषय में मैंने एक पॉलिसी पेपर लिखा और उसमें वर्तमान सन्धि के स्वरूप को देखते हुए उच्च गुणवत्ता वाले विज्ञान के माध्यम से वहाँ अपनी मौजूदगी जताने की उत्कट इच्छा दर्ज़ की। साथ ही, अन्टार्कटिक विज्ञान के संदर्भ में विचार-मन्थन करने वाले सत्र आयोजित किए एवं डी.एस.टी एवं सी.एस.आई.आर. को इस राष्ट्रीय कार्यक्रम में सहयोग करने के लिए उनकी कुछ संस्थाओं को दीर्घकालीन प्रतिबद्धता से इस कार्यक्रम के लिए फंड देने का अनुरोध किया।

इसके परिणामस्वरूप, बड़ी संख्या में शोध प्रयास शुरू किए गए। नवम्बर 1989 के अन्टार्कटिक अभियान के प्रावधान में इन्हें शामिल किया गया। वस्तुतः ये सब पहल उस वर्ष एक-साथ प्रस्तावित दो अभियानों के लिए थीं जो अन्टार्कटिक की दो विभिन्न साइट की तरफ कूच करने वाले थे। इसके विषय में संसद की नापसन्दगी और प्रधानमन्त्री के अपने संशय को बताते हुए सभी ने मुझे इसके ख़िलाफ सुझाव दिए। किन्तु मैंने अपने प्रस्ताव की तार्किकता की व्याख्या करने के लिए एक विस्तृत शोधपत्र तैयार किया था। किसी चमत्कार की तरह, चार दिनों के भीतर दोनों अभियानों

के लिए प्रधानमन्त्री की सहमति जहाज़ छूटने के हफ्तों पहले मिल गई। अतः अगले दो वर्षों में हम, कुछ सचमुच रोचक कार्यक्रम एवं अध्ययन शुरू करने में सफल हो सके। ज़मीन से सटी हुई वायुमण्डलीय परत में मौसम व्यवस्था, सुपरग्रेन्युलेशन्स - सूरज के कोरोना में एक पेचीदा गतिशील संरचना का अध्ययन, एकाकी पर्यावरण में मनुष्य के न्यूरो-फिज़ियोलॉजिकल रिस्पोन्स, तथा लगातार परिवर्तनशील पृथ्वी एवं उसके पर्यावरण के आँकड़ों की सटीक मोनिटरिंग को लेकर जीपीएस नियन्त्रित भूवैज्ञानिक मानचित्र बनाना एवं उत्सर्जन तथा अवशोषण स्पेक्ट्रोमेट्री विज्ञान का इस्तेमाल करते हुए पूरे साल ओज़ोन तीव्रता का अध्ययन। यहाँ तक कि मैंने जहाज़ में एक सीट ऐसे रचनात्मक लेखक एवं कलाकार के लिए आरक्षित करा ली थी जो इस असाधारण प्राकृतिक परिवेश एवं घटनाओं पर अपने अनुभव के सन्दर्भ में कुछ अनोखी अभिव्यक्ति रचने में रुचि रखता/रखती हो। जैसे - धरा-रहित विशाल मानव-विमुख धरातल, अन्टार्कटिक की गर्मियों के सूरज को घेरने वाला अद्‌भुत क्षितिज, ध्रुवीय चुम्बकीय रेखाओं की सघनता के कारण होने वाली शानदार आकाशीय आतिशबाज़ी, पेंग्विन, सील तथा अन्टार्कटिक टर्न (एक पक्षी) की अभिभूत कर देने वाली दुनिया, जो इस सर्वाधिक अकल्पनीय पारिस्थितिक संरचना

भारत का 80 के दशक में अन्टार्कटिक अभियान शुरू हुआ। जल्द ही उस बर्फीले महाद्वीप पर शोधकार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए दक्षिण गंगोत्री और मैत्रेयी नाम से बेस स्टेशन बनाए गए। चित्र में वायुमण्डल सम्बन्धी कुछ प्रयोग किया जा रहे हैं।

में भी जीवन की अनन्त डिज़ाइन क्षमता की पुष्टि करते हैं। हालाँकि, यह प्रावधान मेरे जाने के बाद खत्म कर दिया गया।

सुजाताः डी.ओ.डी. में तीन साल काम करने का वादा किया था, उसके बाद आपने क्या किया?

विनोद गौड़ः डी.ओ.डी. में पदभार ग्रहण करते वक्त ही मैंने दृढ़तापूर्वक यह निर्णय लिया था कि मैं तीन वर्ष बाद सरकारी सेवा छोड़ दूँगा और अकादमिक क्षेत्र में लौट जाऊँगा। कार्यकाल के अन्तिम दौर में इस विकल्प पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहा था कि मैं एक अनुबद्ध प्रोफेसर के रूप में रुड़की लौट जाऊँगा। जब मैंने कैबिनेट सचिव को डी.ओ.डी. से अपने जाने की अपरिवर्तनीय तिथि के बारे में आगाह किया तो उन्होंने मुझे सूचना दी कि सरकार ने मेरे लिए सी.एस.आई.आर. में वैज्ञानिक का एक पद निर्मित किया है और मैं अपनी पसन्दीदा किसी भी जगह पर काम करने के लिए मुक्त हूँ। तभी एक दिन, एन.ए.एल. (नेशनल ऐरोस्पेस लेबोरेट्रीज़) निदेशक रोड्डम नरसिम्हा ने सुझाव दिया कि मुझे बैंगलोर जाकर सी.एस.आई.आर. के नव-स्थापित सेण्टर ऑफ मैथमैटिकल मॉडलिंग एण्ड कम्प्यूटर सिम्युलेशन में काम करना चाहिए। यह मेरे जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण सुझाव सिद्ध हुआ।

भारतीय प्लेट पर तनाव और विरूपण का आकलन

सुजाताः आपने सी-एम.एम.ए.सी.एस. में क्या काम करने की योजना बनाई?

विनोद गौड़ः एन.जी.आर.आई. में टोमोग्राफी प्रयोग के बाद मैंने अन्वेषण के लिए परीक्षण की दो दिशाएँ सोची थीं: VLBI का इस्तेमाल करते हुए दूसरों की तुलना में भारतीय प्लेट का सापेक्ष वेग पता करना और ब्रॉडबैण्ड सीस्मोलॉजी का प्रयोग करते हुए हैदराबाद के धरातल के नीचे तथा शेष भारत में पृथ्वी की ऊपरी परत की हाई रेज़ोल्यूशन इमेजिंग। बैंगलोर आने के बाद मैंने पहला काम एन.जी.आर.आई. स्टेशन द्वारा अर्जित किए गए ब्रॉडबैण्ड आँकड़ों को प्राप्त करने के लिए अनुरोध किया, जिससे हम अन्दरूनी संरचना के बारे में कयास लगा सकें। हालाँकि इसके लिए कभी इन्कार नहीं किया गया लेकिन ये आँकड़े उपलब्ध भी नहीं कराए गए। लेकिन सौभाग्य से यह सब जानकारी विश्वव्यापी इंटरनेट नेटवर्क पर भी उपलब्ध थी, जिसे मैंने केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी की यात्रा के दौरान इन्टरनेट से आखिर हासिल कर लिया। एन.जी.आर.आई. में रिकॉर्ड किए गए ये आँकड़े आठ साल तक अनदेखे पड़े रहे और पृथ्वी की अन्दरूनी संरचना

को पता करने के लिए उनकी उपयोगिता को पहचाना नहीं गया। सौभाग्य से, भारतीय महाद्वीप के एक हिस्से की ऊपरी परत के इस पहले ब्रॉडबैण्ड अध्ययन का प्रकाशन 1996 में हुआ जिससे लोगों की रुचि जागृत हुई और तब से भारत के बहुत-से वैज्ञानिकों ने देश के बड़े हिस्से में पृथ्वी की अन्दरूनी परत के बारे में जानने के लिए इनका इस्तेमाल किया।

इस दौरान, टेक्नॉलॉजी में हुए नए विकास की वजह से जीपीएस रिसीवर किसी स्थान विशेष का मिलीमीटर तक सटीक आकलन करने में सक्षम बन गए। जो VLBI से प्राप्त अवलोकनों जितना ही सटीक था। यह अन्तर-प्लेट वेगों (inter-plate velocities) एवं क्षेत्रीय डिफोर्मेशन य़ानी विरूपण की दर को सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त था। अतः मैंने जीपीएस भूगणित (geodesy) का प्रयोग करके हिमालय में विरूपण की दर पता करने के तरीकों पर काम शुरू किया। हालाँकि, तुलना में बहुत अधिक सरल एवं सस्ते होने के बावजूद अभी भी जीपीएस काफी महँगे थे। एक उपकरण का मूल्य लगभग 25,000 डॉलर था और मेरे पास उस वक्त उसे हासिल करने के लिए कोई शोध कोष नहीं था।

अतः मैंने बोल्डर स्थित कोलोराडो विश्वविद्यालय के एक मित्र रोजर बिल्हम को पत्र लिखा, जिन्हें मैं केम्ब्रिज के ज़माने से जानता था, कि वह अपने 6 जीपीएस सिस्टम हमें 6 हफ्तों के लिए उधार दे दें, ताकि इसका इस्तेमाल हम 19वीं शताब्दी में दक्षिण भारत के लगभग 20 स्मारकों के 'ग्रेट ट्रैएन्ग्युलेशन सर्वेक्षण' के निर्देशाँकों के पुनर्माप के लिए कर सकें। हमारा इरादा था कि 3-4 टुकड़ियों में हम प्रत्येक स्टेशन पर 3-4 दिन लगाएँगे। इन सर्वेक्षण के निर्देशाँक को 130 साल पहले मापा गया था, और सर्वे ऑफ इण्डिया के संस्मरणों के 14 अंकों में इनका बहुत सटीक तरीके से दस्तावेज़ीकरण किया गया है। इस वजह से हम इनकी तुलना नए परिमाण के साथ करके, इस विस्तृत क्षेत्र के संचित विरूपण (accumulated deformation) को सुनिश्चित कर सकते हैं। उस वक्त ये दस्तावेज़ भारतीय वैज्ञानिकों को अनुपलब्ध थे क्योंकि इनको गोपनीय करार कर दिया गया था। लेकिन ये दुनिया के अन्य पुस्तकालयों में उपलब्ध थे जिससे हम अपने प्रयोगों के लिए उनका इस्तेमाल कर सके। रोजर बहुत ही उत्साह से इन उपकरणों को बैंगलोर लाने के लिए तैयार हो गए। उसका खर्च उन्होंने अपने खुद के प्रोजेक्ट से वहन किया। मेरा विश्वास था कि यह प्रयोग अगर सफल हुआ तो हम विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी मन्त्रालय को नियमित सहयोग देने के लिए आग्रह कर सकते हैं, जिससे अगले स्तर के सवालों को सम्बोधित किया जा सके। जैसे भारत के विभिन्न हिस्सो में,

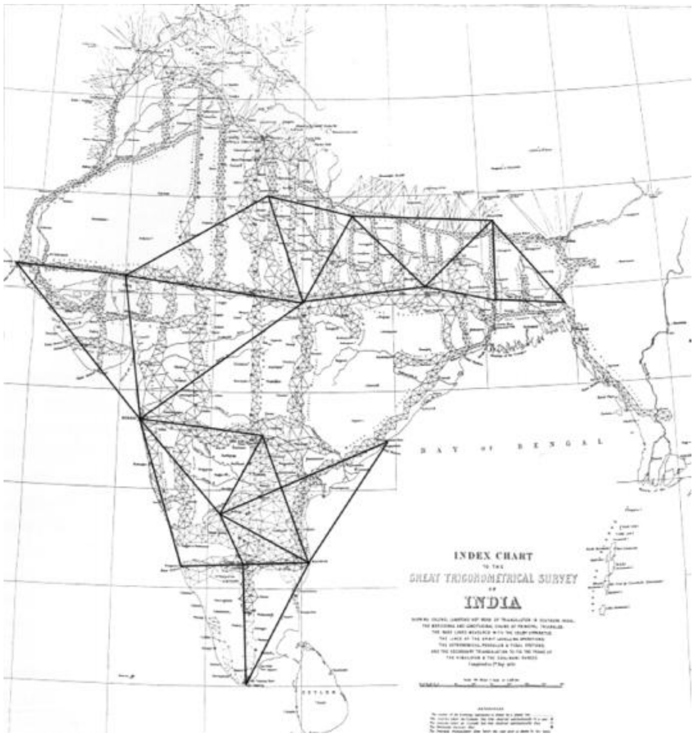

19वीं सदी में किए गए ग्रेट ट्राएन्ग्युलेशन सर्वे के दौरान बेस लाइन और विविध त्रिकोणों से भारतीय महाद्वीप की नपाई की गई थी। यहाँ नक्शे में कई विशाल त्रिभुजों को दिखाया गया है, जिन्हें फिर छोटे-छोटे त्रिभुजों में विभाजित किया गया था।

खासतौर से हिमालय में विरूपण किस दर से हो रहा है?

जल्दी ही, हम इस प्रयोग को करने के लिए तैयार हो गए। लेकिन हमें बैंगलोर के किसी आसानी से संचालित होने वाली साइट पर एक अविखण्डित शैलतल की आवश्यकता थी जहाँ हम सन्दर्भ रिसीवर को लगा सकें तथा कुछ 10 लोगों की ज़रूरत थी जो लगभग 20 दिनों तक हमारी चुनी हुई नेटवर्क साइट पर समानान्तर रूप से मापन के प्रयोग कर सकें।

हमें पता था कि भारतीय विज्ञान संस्थान (आई.आई.एस.सी.) के प्रांगण में ही एक सेकेण्डरी ट्रैएन्ग्युलेशन साइट है जो एक अविखण्डित शैलतल है। यह रेफरेन्स स्टेशन के लिए एक अत्युत्तम संरक्षित साइट होगी। अतः हमने निदेशक पद्मनाभन से अनुमति ली कि क्या हम इस 15 वर्ग मीटर

की जगह को एक बाड़ा लगा कर इस्तेमाल कर सकते हैं। उनका उत्तर सकारात्मक और बहुत ही गर्मजोशी भरा था। उन्होंने सभी ज़रूरी आवश्यकता की पेशकश की। आज, यह भारत का एकमात्र सन्दर्भ साइट है जिसका वैश्विक नेटवर्क से वास्तविक समय पर सम्पर्क है। यह विश्व की परिक्रमा करते हुए जीपीएस सेटेलाइट्स के स्थान का सटीक निर्देशांक निर्धारित करने के लिए एक अपरिहार्य आवश्यकता है।

हमे सी.एम.एम.ए.सी.एस. के सभी शोध छात्रों का भी उत्साहजनक सहयोग मिला। उन्होंने अपने विषय-विशेष की परवाह किए बगैर दक्षिणी भारत के जीपीएस मापक अभियान में हिस्सा लिया।

हमारे निष्कर्षों ने पहली बार प्रयोगों के द्वारा भारतीय प्लेट के वेग को यूरेशियन प्लेट की तुलना में सुनिश्चित किया और यह दिखाया कि दक्षिणी प्रायद्वीप में तनाव (strain) की वार्षिक दर 10^{-9} से ज़्यादा नहीं है। ज़ाहिर है कि पूरा महाद्वीप उत्तरी अक्षांश (जैसे दिल्ली) तक एक ठोस निकाय (rigid body) के रूप में खिसक रहा है। शायद इस प्लेट का सारा तनाव इसके उत्तरी क्षेत्र में संचित हो रहा है। इस प्रारम्भिक प्रयोग के बाद पूरे देश में जीपीएस भूगणित का व्यापक रूप से इस्तेमाल शुरू हो गया है, जिससे भविष्य में आने वाले भूकम्प की सम्भावित जगहों की तनाव संचित क्षेत्र से पहचान हो सके।

सुजाताः आप अपने माप को कैसे मान्यता देंगे, validate करेंगे जबकि आप 19वीं शताब्दी से अलग टेक्नॉलॉजी इस्तेमाल कर रहे हैं?

विनोद गौड़ः 19वीं शताब्दी के सर्वेक्षकों ने कर्नल लैम्बटन द्वारा बहुत ही सटीक तरह से सैद्धान्तीकृत किए गए शोध निबन्ध के सुझावों का अनुसरण किया। इसे उन्होंने उस वक्त की ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सहयोग प्राप्त करने के लिए लिखा था, जिससे केप ऑफ केमोरिन से लेकर हिमालय तक त्रिभुजों की लगातार श्रृंखला के माध्यम से भारत के लिए एक एकीकृत सन्दर्भ की रूपरेखा बनाई जा सके। इसमें विशिष्ट तौर पर चुनी गई ट्रायएन्ग्युलेशन नेटवर्क की लगभग एक दर्जन त्रिभुजों की भुजाओं की लम्बाई का सीधा सटीक मापन करने का प्रावधान भी रखा गया था जो अन्य सब त्रिभुजों के लिए भुजाओं व कोण से गणना करके पता किया जाता था। इन्हें आधार-रेखाएँ माना गया और इनके कारण त्रिभुजों का जाल फैलने पर भी मापन में होने वाले गलतियाँ बँट जाती हैं। उन्होंने इन सीधी मापों को बहुत ही सावधानी एवं कुशलता से नापा था और रिवर्स कवरेज के माध्यम से दिखाया कि इसकी सटीकता एक किलोमीटर में एक मिलीमीटर तक है। बैंगलोर में मेखरी सर्कल के पास के पार्क के एक छोर

पर ऐसी 11 किलोमीटर की एक आधार रेखा है। हमने इस आधार रेखा के दोनों तरफ तीन दिन से अधिक समय तक जीपीएस रिसीवर लगाया और उसकी लम्बाई की गणना की। हमारा निष्कर्ष, इस आधार रेखा के 19वीं सदी के आकलन के बिल्कुल समीप निकला और उस समय उल्लेखित सटीकता से कम न था। अतः हमने अन्य स्मारकों के मापन की अपनी योजना पर आगे बढ़ना जायज़ समझा जिससे पिछले 130 साल से अधिक समय में बैंगलोर से केप ऑफ केमोरिन तक के इस क्षेत्र में संचित तनाव की गणना की जा सके।

सुजाताः आपने इस काम को हिमालय तक विस्तारित करने के लिए कितना प्रयास किया?

विनोद गौड़ः जब इस प्रयोग की योजना बन रही थी तभी सौभाग्य से एक युवा मेधावी वैज्ञानिक श्रीदेवी आईं। उन्होंने जीपीएस में काम करने के लिए और भारतीय विज्ञान संस्थान के प्रांगण में बहुत परिश्रम से मूल साइट पर निर्देशाँक स्टेशन स्थापित करने में रुचि दिखाई। तब तक इस काम को और व्यापक तौर पर करने के लिए हमें कुछ धनराशि भी मिल गई थी। हमने तुरन्त कुमांऊ की गोरी-गंगा नदी के साथ लगे केन्द्रीय हिमालय और लद्दाख के पश्चिमी हिमालय के पार तनाव क्षेत्र की खोजबीन के लिए प्रयोगों की रूपरेखा बनाई। साथ ही, एक दूसरा निर्देशाँक स्टेशन दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय प्रांगण में लगाया। यहाँ स्कूल ऑफ एन्वायरमेन्टल साईन्सेज़ के डॉ. राजमणि ने हमारा बहुत ही गर्मजोशी के साथ स्वागत किया।

हमारे लद्दाख प्रयोग की रूपरेखा बहुत लम्बे समय से बहस किए जा रहे भौतिक विज्ञान के एक प्रश्न को तय करने के लिए बनाई गई थी। वह कौन-सा मैकेनिज़्म है जिससे तिब्बत ने भारतीय प्लेट के उत्तर की ओर आगे बढ़ने को समायोजित किया? तिब्बत के हिस्सों को चीरकर उनको पूर्व की ओर हटाते हुए अथवा गाढ़ापन (viscous thickening) बढ़ाते हुए, इन दोनों मैकेनिज़्म से काराकोरम फॉल्ट के उत्तर/ऊपर की ओर के लद्दाख के भूभाग की पूर्व की ओर खिसकने की दर की भविष्यवाणी एकदम अलग थी। पहली थी - 30 मि.मी. प्रतिवर्ष, दूसरी - केवल 4 मि.मी. प्रतिवर्ष। जिस तरह से वे पदार्थ की भौतिक स्थिति की कल्पना करते थे, वे दो परिदृश्य इसमें भी जुदा थे। भूकम्प के खतरे का परिमाण पता करने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि हम उस पदार्थ की भौतिक स्थिति कैसी मानते हैं। एक में उसे पूरी तरह से लचीला (elastic) माना गया था और दूसरा श्यान लचीला (visco-elastic)। हमारे परिणाम ने स्पष्ट रूप से

दिखाया कि लचीला मॉडल अमान्य था। अन्ततः हमारा यह काम प्रकाशित हुआ, बावजूद प्रबल विरोध के होते। इससे भी आगे हमारे परिणाम ने दिखाया कि लद्दाख एक तरल निकाय यानी फ्लुइड बॉडी की तरह भारत के ऊपर 18 मि.मी. प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रहा है।

इसी बीच हमारे कुमांऊ के काम एवं रोजर बिल्हम के नेपाल के काम में भी यही निष्कर्ष सामने आए। बाद में पूर्वी हिमालय में इस काम के विस्तार ने भी इसी सघन निष्कर्ष की पुष्टि की। इन सब परिणामों की वजह से अब हमारी अच्छी-खासी समझ बन गई थी कि हिमालय में तनाव किस तरह बढ़ता है, जो फिर मैदानों से लम्बी छलांग लगाते हुए पर्वतीय शृंखला में जाकर मुक्त होता है।

जुलाई, 1996 में मैं सेवानिवृत्त हो गया और भारतीय ताराभौतिकी संस्थान (आई.आई.ए.) के निदेशक प्रोफेसर रामनाथ कौशिक ने मुझे अपने यहाँ आमन्त्रित किया। वे लद्दाख में दुनिया की सबसे ऊँची वेधशाला स्थापित करने के लिए एक प्रकाशीय एवं अवरक्त टेलिस्कोप (high altitude optical and infrared telescope) लगा रहे थे। उन्होंने मुझसे इस काम के लिए बनी कमेटी की अध्यक्षता करने को कहा। यह एक रोचक एवं नई गतिविधि थी जिसने मुझे और कुछ नया विज्ञान सिखाया और मुझे इस साइट पर एक स्थाई जीपीएस एवं एक ब्रॉडबैण्ड सीस्मोग्राफ लगाने का अवसर भी दिया।

कार्बन की वार्षिक मात्रा का मापन

कई सालों बाद, 2003 में, जब जीपीएस विज्ञान से शान्तिपूर्वक पीछे हट रहा था तो अकस्मात, मैं खोज की एक नई दुनिया में प्रविष्ट हो गया। यह सम्भावना सी.एम.एम.ए.सी.एस. द्वारा एक फ्रांसीसी प्रतिनिधिमण्डल को दिए जा रहे रात्रि भोज में अचानक प्रकट हुई। यह प्रतिनिधिमण्डल, वायुमण्डलीय विज्ञान के क्षेत्र में संयुक्त शोध के बारे में चर्चा करने के लिए आया था। मुझे याद नहीं लेकिन बातचीत किसी समय, दुनिया भर में विभिन्न मौसमों के दौरान होने वाले कार्बन के निरंतर परिवर्तन/प्रवाह (quantifying carbon fluxes) को परिमाणित करने की समस्या की ओर मुड़ गई। यानी कि वायुमंडल में से दुनियाभर के समुद्रों एवं जीवों में रच-बस जाने वाली, या उनमें से निकल कर वायुमंडल में समा जाने वाली कार्बन की वार्षिक मात्रा का मापन। इसके प्रति दो तरह के रुख हो सकते हैंः 1 - मोनिटरिंग स्टेशनों के घने नेटवर्क के माध्यम से, यद्यपि इस तरीके में समुद्र एक चुनौती पेश करेगा, 2 - या फिर पूरे ग्लोब पर फैली हुई कुछ

चुनिन्दा जगहों पर सान्द्रता नापकर, और कुछ गणितीय मान्यताओं का इस्तेमाल करते हुए, CO_2 के प्रवाह की गणनाएँ की जा सकती हैं। मैंने सुझाव दिया कि लद्दाख के हैनले में स्थित भारतीय ताराभौतिकी वेधशाला CO_2 की मात्रा/सांद्रता मापने का एक आदर्श स्थल होगी क्योंकि यहाँ पर औद्योगिक एवं जैविक CO_2 के कोई स्थानीय स्रोत नहीं हैं।

वायुमंडलीय कार्बन को मापने के लिए भारत की पहली अतिउच्च परिशुद्ध (ultra high precision) प्रयोगशाला अगस्त 2005 में शुरू हुई और इसमें पहला रोचक परिणाम यह प्राप्त हुआ कि यहाँ प्राप्त कार्बन-परिवर्तन के आधार पर प्रवाह का टेम्परेट एशिया के लिए परिमाण यू.एस. स्टेशन पर आधारित आँकड़े की तुलना में कम था। यह काम जारी है, जबकि हम कुछ अन्य अधिक आधारभूत सवालों को सम्बोधित कर रहे हैं जो पूरी दुनिया में कार्बन-प्रवाह के आकलन के विषय में व्याप्त अनिश्चितता को कम करने में मदद करेगा। इस बीच सी-एम.एम.ए.सी.एस. में दो उत्साही वैज्ञानिक स्वाति एवं इन्दिरा कुछ और अतिरिक्त निगरानी स्टेशन स्थापित करने में व्यस्त हैं। वे पाण्डिचेरी एवं अन्दमान में दो नए साइट पर उपकरण लगा कर अरब सागर एवं बंगाल की खाड़ी में समुद्री कार्बन-प्रवाहों को समझने में हमारी मदद कर रही हैं।

सुजाताः आपकी वर्तमान चिन्ताएँ कौन-सी हैं?

विनोद गौड़ः एक प्रमुख चिन्ता का विषय है - समाज में अल्पसंख्यकों के प्रति बढ़ती असहिष्णुता। मेरी भावना आहत होती है जब मैं अपने लोगों की आन्तरिक प्रकृति को देखता हूँ। जातीयता, भाषा और यहाँ तक कि विश्वास की विविधता के प्रति उनकी ईमानदार स्वीकार्यता को आनुपातिक रूप से कम, लेकिन ज़्यादा आक्रामक लोगों द्वारा बुरी तरह कुचला जाता है। ये आक्रामक लोग अपने जुनून से संचालित होते हैं न कि तार्किक विवेक से।

विनोद के. गौड़ः संवेदनशील प्रशासक, रचनात्मक एवं मदद को तत्पर वैज्ञानिक हैं। उन्हें भारत शासन का 'एस.एस. भटनागर' पुरस्कार एवं अमेरिकन जियोफिज़िकल यूनियन का 'फ्लिन अवार्ड' मिल चुका है।

सुजाता वरदराजनः येल युनिवर्सिटी, कनेक्टिकट, अमरीका से मॉलिक्युलर बायोफिज़िक्स एंड बायोकेमेस्ट्री में पढ़ाई की है। स्वतंत्र लेखक हैं। योग और कविताओं सहित विविध अभिरुचियों की धनी हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवादः वर्षाः स्वतंत्र अनुवादक हैं।

मूल लेख 'रेज़ोनेंस' पत्रिका के अंक, नवम्बर 2010, खण्ड 15 में प्रकाशित हुआ था।